यह कैसा मजाक है

मदन डागा

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

कवि की
आस्थाओ के अनुकूल
श्रद्धेय बाबा नागार्जुन को

एपीटाफ़

मैंने
इसीलिए आँसू नहीं टपकाया
कि आँसू की एक बूंद
जुल्म के आगे पूर्ण विराम-सी खड़ी
देह के पाँव तले गिरकर
उसे विस्मयादिबोधक चिह्न न बना दे !

और अब मैं
साँस थकने पर जो
डेरा-सा पसर गया हूँ मैं
यह न समझना कि मर गया हूँ मैं !

हकीकत में पसरने के बहाने
जिन्दगी को ही रेखांकित कर रहा हूँ मैं

मैं, हाँ मैं
सर्वहारा मैं
तुम्हारा मैं !

कवि की हस्तलिपि मे एक कविता

तर्पण के दो शब्द

जोधपुर। अक्टूबर 1970। तीसरे हफ्ते की कोई तारीख। स्थानीय प्रगतिशील लेखक सघ की बैठक। यथा अवसर कविता पाठ। कुछ कविताएँ राजस्थानी मे, कुछ हिन्दी मे। लेकिन विशेष रूप से ध्यान खीचा एक कविता ने। शीर्षक 'कुर्सी प्रधान देश'। उठान ही कुछ ऐसी थी कि सोता हुआ श्रोता भी उठ बैठे—

पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते हैं।
दोस्त मेरे
भारत एक कृषि प्रधान नही
कुर्सी प्रधान देश है।

फिर जिन पक्तियो को बार-बार सुनाने के लिए कहा गया वे थी—

प्रेम करने की एक उम्र होती होगी
चापलूसी करने की कोई उम्र नही होती।

इन पक्तियो के लेखक थे डॉ. मदनलाल डागा। कुछ दिनो बाद यह कविता 'धर्मयुग' मे छपी। जोधपुर के प्रगतिशील लेखको की छोटी-सी दुनिया मे काफी दिनो तक कविता की इन पक्तियो पर चखचख रही—

इधर कुछ तथाकथित क्रान्तिकारी
हँसिये पर से हथौडा हटाकर
चमचा रख रहे है।

टीक याद नही, लेकिन शायद ये पक्तियाँ कविता मे बाद मे जोडी गई थी। जो हो, इन पक्तियो के लिए डॉ. डागा की प्रतिबद्धता पर कुछ लोगो ने सन्देह व्यक्त किया। डॉ. डागा उन आलोचनाओ को सुनकर मुसकराते रहे। कोई कमजोर आदमी होता तो शायद भटक जाता। वे फौलाद के बने थे।

जोधपुर के चार वर्षो के प्रवास मे उनसे रोज नही तो अक्सर मुलाकात होती रही। उन्हे निकट से जानने का मौका मिला और मैंने जाना कि उनका जीवन-सघर्ष कितना कठिन था। उन सघर्षो मे मन का कडवा होना स्वाभाविक था। वह कडवाहट उनकी कविताओ मे भी है। लेकिन बडी बात यह है कि उस कडवाहट को डॉ. डागा ने कविता का रूप दिया।

मुलाकात तो जोधपुर छोडने के बाद भी होती रही, लेकिन फिर कविताएँ

सुनने का मौका न मिला। कविता की चर्चा भी वे कम ही करते थे। बहुत दिनो तक यह पता भी न लगने दिया कि वे क्या लिख रहे है। सहसा पिछले साल यह शोक समाचार मिला कि डॉ. डागा नही रहे।

डॉ. मदनलाल डागा नही रहे, लेकिन उनकी कविताएँ हमारे सामने हैं। ये कविताएँ स्वयं बोलती हैं। इन्हे मेरी या किसी और की भूमिका की जरूरत नही है। उनकी पत्नी श्रीमती सावित्री डागा के आग्रह पर मैंने जब इस काव्य-सकलन के लिए शुरू मे 'दो शब्द' लिखना स्वीकार कर लिया था, तो कविताएं देखी न थी। पाण्डुलिपि से गुजरते हुए सहसा इन पक्तियो पर दृष्टि अटक गयी—

मैं तो मरकर भी
धरती के उन कोनो मे
धधकना चाहता हूँ
जहाँ सर्वहारा जीने के लिए
साँस लेने के लिए सघर्ष कर रहा है।

मैं तो मरकर भी
'उनको' दहशत मे डालना चाहता हूँ
जो मेरी शवयात्रा मे शरीक होकर
मेरी आकस्मिक मौत के प्रति
सहानुभूति दिखाना चाहते है
क्योकि
मेरी लाश के प्रति सहानुभूति
मेरी जिन्दगी को मारी गई ठोकर
से ज्यादा क्या मानी रखती है।

ये पक्तियाँ पढने के बाद, डॉ. डागा के प्रति कुछ भी कहने का साहस जुटा पाना आसान नही है। मैं उनकी शवयात्रा में शामिल न हो सका। सचमुच ही वे किसी की सहानुभूति के मोहताज नही हैं। वे एक योद्धा कवि थे और सहानुभूति किसी योद्धा का अपमान है। यह हिमाकत मैं न करूँगा। ये कविताएँ मदनलाल डागा का स्थायी स्मारक हैं। ऐसे कवि कम नही हैं जो सिर्फ एक मरणोत्तर प्रकाशित कविता-सग्रह से अमर हो गये। यह कविता-सग्रह ऐसा ही होगा, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नही है। आज बरसी के अवसर पर मैं इन थोडे-से शब्दो के साथ अपने एक प्रिय कवि बन्धु का तर्पण करता हूँ।

—नामवर सिंह

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नयी दिल्ली

यह कब सोचा था

प्रस्तुत पुस्तक के प्रसग मे कुछ लिखने का सोचते ही, भीतर-बाहर सभी कुछ इतना अधिक उद्वेलित हो उठता है या इतना जम जाता है, जो शब्दो की पकड मे ही नही आता। उनके सम्पर्क मे जिये तीन दशक लेखनी की नोक पर इस कदर लद जाते हैं कि कुछ लिखते ही नही बनता। यह कब सोचा था कि उनकी पुस्तक के प्रकाशन-पूर्व, उनकी चिर-अनुपस्थिति मे, मुझे लिखना होगा! लगता है, जिन्दगी की कहानी वस्तुतः स्याही से नही, रक्त और आँसुओ से ही लिखी जाती है। उन्होने जो कविताएँ अभावग्रस्त, शोषित जन की पीडा से उद्वेलित हो आक्रोश की आग मे सुलगते अन्तर व खौलते खून से रची, उनके लिए मुझे भी आँसुओं से ही कुछ लिखना पड रहा है।

पिछले कई वर्षो से एक अनजानी बीमारी (केन्सर) उन्हे कमजोरी व थकान के रूप मे हर क्षण घेरे रहती थी। ऊपर से नौकरी और जीवन के अनेक पक्षो से जुडी कार्य-व्यस्तता ने उन्हे जमकर लिखने व लिखी रचनाओ को प्रकाशित करवाने की आकाक्षापूर्ति का अवकाश ही नही दिया। उन्होने साल-भर पूर्व, 'यह कैसा मजाक है' शीर्षक से 83 पृष्ठ की पाण्डुलिपि तैयार की थी, जिसमे वे अपनी बहु-प्रशसित-बहुचर्चित और प्रिय कविता 'कुर्सी प्रधान देश' को क्रम मे प्रथम रखने का लोभ सवरण न कर सके थे। सम्भवत. इसलिए कि इस कविता की छोटी-सी कहानी भी बन गयी थी। कविवर भवानीप्रसाद मिश्र के आग्रहपूर्ण आदेश पर यह कविता, सन् 1972 मे, 'धर्मयुग' को भेजी गयी। उत्तर मे श्री धर्मवीर भारती का, 15.9 72 का लिखा, पत्र मिला—"इतना बेबाक और सटीक व्यग्य कविता मे आज बहुत कम देखने को मिलता है। बधाई!" 'धर्मयुग' मे प्रकाशनोपरान्त बिहार मे श्री जे. पी. के नेतृत्व मे चलनेवाले आन्दोलन मे इस कविता की प्रथम व अन्तिम चार-चार पक्तियाँ लेकर (लेखक के नाम सहित) लाखो पोस्टर बनवाकर दीवारो पर चिपकाये गये। उस पोस्टर का ब्लाक, 'धर्मयुग', 'दिनमान', 'ऑर्गनाइजर', 'ग्रामराज्य', 'पांचजन्य', 'टाइम्स आफ इण्डिया' आदि हिन्दी-अग्रेजी के कई पत्रों में छपे। इस पोस्टर के पर्चे भी ससद मे फेंके गये।

कुछ वामपन्थी लोगो ने उन काव्य-पक्तियो का गलत अर्थ समझते हुए, उसमे कम्युनिस्ट पार्टी को अपमानित करने की बात भी कही। किन्तु उनका आशय तथाकथित क्रान्तिकारियों पर व्यंग्य करना था, जो उनकी वैचारिक निष्ठा के लिए अपने ही लोगों की आलोचना करने की प्रवृत्ति का प्रमाण था। इस प्रकार

अनायास ही इस कविता का उपयोग जन-आन्दोलनों मे किया गया। 'योर्स-फेथफुली' भी राज्य-कर्मचारियो की एक लम्बी हड़ताल के समय इसी प्रकार प्रयुक्त व प्रशसित हुई। वे कविता की सार्थकता भी इसी में मानते थे कि वह गलत *व्यवस्था, अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध हथियार बन सके।*

उनकी कविताओ में कुछ सन्दर्भ व शब्द बार-बार दस्तक देते हैं। जैसे—रोटी, भूख, आँसू, नेता, अफसर, कुर्सी आदि। ये सब फैशन के तौर पर या अकारण ही नही है। कही-कही इन शब्दो के व्यापक संवेदनात्मक प्रतीकार्थ भी हैं, और कही अभिधार्थ भी, परन्तु इसकी पृष्ठभूमि मे उनके अपने जीवन के तल्ख अनुभव हैं। बचपन मे ही अपनी माता (श्रीमती जसोदा देवी) व पिता (श्री गुलीचन्दजी जो अत्यन्त संवेदनशील, स्वाभिमानी और कुशाग्रबुद्धि व्यक्ति तथा समाजसेवी थे) का साया उठ जाने पर किसी अप्रिय पारिवारिक घटना व कुछ परिस्थितियो ने उनके सुकोमल, अतिभावुक किशोर-मन को ऐसा आहत किया कि उन्हे पूर्ण स्वावलम्बी बनने का कठोर निर्णय लेने और अकेलेपन तथा अभावो के त्रासद पथ पर चलने को बाध्य कर दिया। पर उनके दृढनिश्चयी, स्वाभिमानी युयुत्सु मन ने प्रतिकूल परिस्थितियो से कभी हार नही मानी। उन्होंने निजी जीवन के साथ समाज में अपने चारो ओर आर्थिक अभावो की अन्तहीन आग मे झुलसते, चीखते, मर-मरकर जीते, घिसटते लाखो लोगो को सवेदना की आँखो से देखा। लोकतन्त्रीय व समाजवादी कहलानेवाले व्यवस्थातन्त्र के नाटक के खलनायको व धर्म के ठेकेदारो द्वारा गरीब, अनपढ, भोली-भाली जनता पर किये जानेवाले जुल्मो को महसूसा। नेताशाही व अफसरशाही के मुखौटेधारी भ्रष्ट आचरणो को निकट से देखा और समझा। उनकी कविताओ मे प्रयुक्त, उपर्युक्त शब्दों व सन्दर्भों के मूल मे जीवन की ये ही बदरूप सचाइयाँ है जो उनके तनावग्रस्त रहने का भी मुख्य कारण थी।

छात्रजीवन से ही उन्हे वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के प्रति अनास्था, स्वाध्याय का शौक, वामपन्थी विचारधारा से सच्चा व गहरा जुडाव रहा। राजनीतिक व शैक्षणिक क्षेत्र मे एक सफल, सघर्षशील, सूझ-बूझवाले छात्र-नेता की भूमिका-निर्वाह ने एक ओर उनके व्यक्तित्व को निखारा तो दूसरी ओर नौकरी के मार्ग को बाधित भी कर दिया। वामपन्थी विचारधारा को पूरी सचाई से प्रत्येक स्तर पर व्यावहारिक धरातल पर जीने की सजा इस देश के आज के वातावरण मे कितनी कडी होती है; इसका प्रमाण है उनकी अवसादो से घिरी जिन्दगी व सुलगती जवानी की मूक कहानी, जो रुला-रुला देती है।

अपनी किसी भी जरूरत के लिए, वैचारिकता व सैद्धान्तिकता से समझौता करना तो उन्होंने सीखा ही नही था। वे उसके लिए हर स्तर पर टूटने तक को तैयार रहते थे, चाहे मित्रता हो चाहे घर-परिवार और चाहे विवाह (दिसम्बर,

1960) के चौदह वर्ष बाद मिलनेवाली प्राइवेट कालेज की नौकरी जो दोनों बच्चियों, कविता व मनीषा के जन्म के पश्चात् मिली थी। उन्होंने इस नौकरी से भी कई बार त्यागपत्र दिये, किन्तु व्यवस्थापको ने उनकी प्रतिभा व कार्यकुशलता को समझते हुए, उन्हें स्वीकार नही किया। उनको अपने विद्यार्थियो से गहरा लगाव था और उनके विद्यार्थी उनको दीवानेपन से प्रेम व आदर करते थे, जो आजकल दुर्लभ है।

वस्तुतः उन्होने जो कुछ भी किया, पूर्ण सचाई व पूरी-पूरी जिम्मेदारी से ही —चाहे वह प्रेम हो या वात्सल्य, मित्रता हो या वैचारिकता, प्रत्येक को अन्त तक खरेपन से निभाया। उनकी कथनी-करनी मे तनिक भी अन्तर नही रहा और अन्तर करनेवालों से उन्हे गहरी नाराजगी भी रही।

उनके लिए जिन्दगी केवल हँसने का पर्याय कभी नही रही। कदाचित् बचपन मे असमय घेर लेनेवाले अवसाद ने ही उन्हे विशेष गम्भीर बना दिया था। एक समय ऐसा भी था कि वे हंसना तक भूल चुके थे। उनके कुछ मित्र मुझे कहते थे, "जब वे सन् 1956 मे छात्र-संघ के चुनाव मे प्रथम बार खडे हुए तो उनको मुस्काना व हँसना भी हमे जबरन सिखाना पडा था।" और जब हंसना सीखा तो ऐसा कि जो भी उनके सम्पर्क मे आया, आज भी उनकी हँसी-मजाक, व्यग्य भरी बातों, अमृत बरसाती चाँदनी-सी मोहक मुस्कान और ठहाकेमार हँसी को याद करके गहरा उदास हुए बिना नही रहता। यों वे सुनते ज्यादा व बोलते बहुत कम थे, निजी व्यथा की बात कहना तो जैसे वे जानते ही नही थे। अखबारो, किताबो मे चाय पीते, खाना खाते समय भी खोये रहना या एकान्त मे उदासी मे डूबे सोचते रहना, तनावो मे टूटते रहना जाने कब से उनके स्वभाव का अग बन चुका था। (ज्यादा पूछने पर कभी-कभी वे गहरी उदासी मे डूबे हुए मुझे कहते थे—आजादी के बाद तो देश की, समाज की हालत और भी बिगडती जा रही है, क्या होगा इस देश का! इस समाज का!!) यही बात उनकी कविता के साथ भी लागू होती है। उनके लेखन के सम्बन्ध मे चाहे जो मत-विरोध हो, किन्तु उनकी लेखकीय ईमानदारी पर शक नही किया जा सकता।

अजीब विडम्बना है कि बाहर अपनी शेर-सी निर्भीक आवाज से दहाडनेवाला, अपने विचारो-विश्वासो मे हीरे-सा खरा व कठोर, फौलादी व्यक्तित्व, भीतर की गहराइयो मे कही नन्हे बालक-सा निश्छल व मासूम भी था। बाहर से पके नारियल-सा खुरदरा कठोर, पर भीतर मधुर दुग्धजल समेटे! मैंने उनके व्यक्तित्व के ये दोनो विरोधी, विपरीत रूप बहुत निकट से देखे जो केवल विरोधी नही कदाचित एक-दूसरे के पूरक थे; जो उन्हे एक आदमकद इसान बनाते थे।

प्रस्तुत कविता-सग्रह की पाण्डुलिपि तैयार करते समय मेरा यह प्रयत्न रहा है कि इसमे उनकी अग्रेजी व राजस्थानी मे लिखी कविताओ को छोडकर;

हिन्दी-उर्दू मे लिखी कविताओ के प्राय. सभी काव्यरूप (हाइकु, क्षणिकाएं, लम्बी कविताएँ, शेर, गजल) समाविष्ट हो सकें। विषय की दृष्टि से भी, सामाजिक, राजनीतिक सामयिक सन्दर्भों से अनुप्रेरित कविताओं के साथ उनकी वैयक्तिक कोमल अनुभूतियो की कुछ कविताएं भी इसी संग्रह मे रखी हैं। यद्यपि ऐसी कविताएँ अपेक्षाकृत उन्होने कम लिखी हैं, पर वे कवि के व्यक्तित्व की पूर्णता को रेखांकित अवश्य करती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की लगभग आधी कविताएँ उनके द्वारा तैयार की गई पाण्डुलिपि की है। शेष उनके अवसानोपरान्त उनके बिखरे कागजों से मैंने फेअर की हैं। उनकी बंधनमुक्त प्रकृति ने उन्हें डायरी या कॉपी मे कभी लिखने ही नही दिया। वे सदा छोटे-बडे, नये-पुराने जैसे भी कागज हाथ मे आ जाते, उन्ही पर लिख डालते। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रथम बार तीव्र वेग मे लिखी, बिना सुधरे-सँवरे रूप मे ही है। उन्हे एक बार लिखने के बाद, पुनः पढा भी गया या नही, कहना कठिन है। अधिकांश कविताएं, अशीर्षक, लिखते-लिखते बीच में ही अधूरी छूटी हुई-सी लगती है; ठीक उनके अधूरे अचानक टूट जानेवाले जीवनक्रम की तरह। काश, वे एक बार इन्हे पढ तो पाते। (यद्यपि रचना को बार-बार लिखने या उसमे अधिक परिवर्तन करने की उनकी प्रवृत्ति नही थी।) ऐसी स्थिति मे अधिकांश कविताओ के शीर्षक भी मुझे ही देने पडे हैं, कई स्थलो पर अस्पष्टता के कारण कुछ पंक्तियो व शब्दो को बदलना व उनके क्रम को भी तय करना पडा है। फिर भी मैंने यथासम्भव उनकी कविताओ को अपने मूल रूप मे ही रखने का प्रयास किया है। पुस्तक का समर्पण भी उन्ही की इच्छानुसार किया गया है। मेरे इस कार्य को सम्पादन मानने की आवश्यकता नही, मैंने तो अपने एक भावनात्मक दायित्व का निर्वाह मात्र किया है। उनकी अधिकांश कविताएँ जो अवाम के दर्द से जुडी हैं, गरीब, शोषित, उपेक्षित जनसमूह को सम्बोधित होने के नाते समाज की ही धरोहर हैं। उसी धरोहर को समाज तक पहुँचाने के लिए, उनके लेखन-चिन्तन को अर्थवत्ता देने के लिए मुझे इनका प्रकाशन अनिवार्य लगा। काश, इन्हे पढकर पाठको का शतांश भी कवि के अन्तर मे सुलगनेवाली आग की चिनगारी का स्पर्श पा सके तो मैं अपने इस टूटे-बिखरे, थके-हारे जीवन के इस अकिंचन प्रयास को सार्थक मानूँगी।

इस पुस्तक के भूमिका-लेखन व प्रकाशन-सहयोग के लिए, आदरणीय प्रोफेसर नामवरसिंह जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर, मैं भारमुक्त नही होना चाहती, हो पाऊँगी भी नही। यथासमय पुस्तक-प्रकाशन के लिए मैं आदरणीया श्रीमती शीला संधू की अत्यन्त आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त मैं उनके (डॉ. डागा के) व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सही-सही मूल्यांकन करनेवाले, उनके मित्रों, सम्बन्धियो, परिचितो, प्रशंसको व चहेतों को कृतज्ञता सहित नमन करती हूँ।

दिनांक : 29-1-1986 | सावित्री डागा

118, नेहरू पार्क, जोधपुर (राज०)

अनुक्रम

कुर्सी-प्रधान देश

पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते है !

दोस्त मेरे !
भारत एक कृषि-प्रधान नहीं
कुर्सी-प्रधान देश है !

हमारे संसद-भवन के द्वार में
कुछ स्प्रिगें ही ऐसी लगी हैं
कि समाजवादी पासा फेंकनेवाले
सेठ की कार आते ही
संसद का द्वार अपने आप खुल जाता है
और, हम गरीबों को देख
चट बन्द हो जाता है !

दोस्त मेरे !
तुम्हारा और मेरा ही नही
कार और द्वार का भी अन्तरात्मी नाता है !

उधर सचिवालय की नाक के नीचे
फटे तम्बुओं में लगनेवाले स्कूलों में
जो बच्चे मिमिया रहे हैं

वे देश का भविष्य बना रहे हैं !

नौजवानों को
बूढा कर देनेवाले ये विश्वविद्यालय
जो कभी बुद्धिजीवी तैयार करते थे
अब स्पंजनुमा डिग्रीजीवी बना रहे है !
जो बीज की तरह
न गल सकते है
न फल सकते हैं

महज पानी उगल सकते हैं
वह जो इन्होने सोखा था
जैसा का तैसा
दुनिया में माई-बाप अब तो है पैसा !

तभी देखो ना
द्रोणाचार्य, अब अँगूठा नही
चैक कटाते हैं
ख़तरा होने पर कैश मँगाते है !

उधर दफ्तरों में
कुछ हवा ही ऐसी चल रही है
कि बिना पेपरवेट रक्खे
काग़ज तो कागज़
फाइलें तक उड़ जाती हैं
पर, 'ऑफ़िशिअल वेइंग मशीनों' में
सिक्के डालते ही

फौरन निकल आती हैं !

'श्याम धन' को पाकर
गोपियाँ जितनी खुश होती थी

उससे ज्यादा तो आज
सफेद टोपियाँ खुश हो रही है !

दोस्त मेरे !
भक्तिकाल कभी खत्म नही होता
उसकी तो मात्र पुनरावृत्ति होती है !

प्रेम करने की
एक उम्र होती होगी
चापलूसी करने की
कोई उम्र नहीं होती !

तभी देखो ना
पुजारीजी अपने बेटे की नौकरी खातिर
मन्दिर में नही,
एम. पी. क्वार्टर्स में प्रसाद चढ़ा रहे है !
और मुल्लाजी मस्जिद में नही
मिनिस्टर के बँगले दुआ माँग रहे हैं !
और हंस
जो कभी मोती चुगते थे
या भूखे मर जाते थे
अब चाँदी की गोल-गोल चवन्नियाँ चुगने लगे है
शायद चवन्नी-सदस्यता
जीने का अनिवार्य साधन बन गयी है !

और इधर
कुछ तथाकथित क्रान्तिकारी
हँसिये पर से हथौड़ा हटा कर
चमचा रख रहे हैं !
और हम सब
समाजवादी स्वाद चख रहे है !

गोया ज़िन्दगी जिन्दगी न हो !

गाय मार जूता दान देना एक कहावत है
मगर आदमी मार बोनस दान देना
सरकार की आदत है !

यह सरकार
जो रक्त-सने चिथड़े दिखा-दिखा
हृदय-परिवर्तन करना चाहती है ना
वे उसके मासिक धर्म के चिथड़े है,
तुम नाहक उसे खून-खरावा समझ डर रहे हो
और प्रायश्चित में आत्महत्या कर रहे हो !

मैं तुम्हें हकीकत कैसे बतलाऊँ
खून का रंग खड़िया से कैसे समझाऊँ ?
मौत से पहले मरने की आदत
वे हम में जान-बूझकर डाल रहे हैं
ताकि वे मौत के बाद भी जी सकें !

वरना तुम क्या समझते हो,
क्या वाकई हम आदमी नही है,
या दोष हमारी व्यवस्था में कहीं है ?
दो टाँगें होने से ही कोई आदमी होता
तो नसैनी भी दो टाँगों पर ही खड़ी होती है
और पूँछ उसके भी नही होती !

दोस्त मेरे ! भेद को समझो
ट्रेजेडी बहुत गहरी है !
और यह उसी दिन हो गयी
जिस दिन किसी वैयाकरण ने
बिना क्रिया देखे
हर पूँछकटे जानवर को
आदमी होने की संज्ञा दे दी !

वरना ऐसा क्यों होता है
कि आदमी आदमी से डर जाता है
और रेंगते-रेंगते
मौत से पहले मर जाता है !

यह भी कोई जिन्दगी है
कि आदमी थक जाये
महज साँस ले-ले कर
और वह भी
खुले वातायन से नहीं,
कानून की कोठरी में किये गये सुराखों पे
नाक रगड-रगड के
गोया जिन्दगी जिन्दगी न हो
साँसो का सिलसिला हो !
या इस धरती पर
हम जैसे ट्रेसपासर हो
और हमारा जन्म
जान-बूझकर किया गया गुनाह !

पर यह भी बिला वजह नहीं है
कि तुम इसे आक्रोश कहते हो
मेरे लिए जो होश है !

किन्तु अब मै

प्राइमरी का बच्चा तो नहीं हूँ
कि जन्म और मौत के बीच की
खाली जगह भरने को ही जिन्दगी समझ लूं !
ज़िन्दगी अब मेरे लिए
पूर्ण विराम तक चलनेवाला पूरा वाक्य है,
सार्थक !
सप्रसंग !!
पर, समझो
मेरे दोस्त ! इसे समझो !
जन्म और मौत के बीच की खाली जगह
उनकी नीयत को नंगा कर रही है
पर वे अपने इस नंगेपन को
सिर से उतारी टोपी से ढाँपना चाहते हैं
और जिन्दगी की लम्बाई
विधान के ओछे बालिश्त से मापना चाहते है !
राष्ट्रीय व्यवस्था के ताले में
गाँधीवादी चाबी टूट जाने पर
वे समाजवादी 'मास्टर की' ले तो आये है
पर उसे जान-बूझकर घुमाया नही जा रहा है
और शोर किया जा रहा है
कि समाजवाद आ रहा है—
समाजवाद आ रहा है !

ताकि समाजवाद का जाप करते-करते
हमारी जिबड़ियों में छाले पड़ जायँ
और हम बक-थक कर मर जायँ !

वरना तुम्ही सोचो
यह सब क्या हो गया है ?
वह लाल-लाल रोशनी
जो कल तक शरीफ़ों की आंखों को काटती थी
आज पीली मन्द रोशनी मे कैसे बदल गयी है ?

चौराहों पर झिलमिलाती ट्यूब लाइटें
नाइट लैम्प कैसे बन गयी हैं ?
राइफलों का बारूद प्रस्तावों में कैसे भर गया है ?
फिर वही पुनरावृत्ति-दोष
आदमी आदमी से कैसे डर गया है ?
ऐसी बात नहीं कि अख़बारों में आग न हो
उनमें आग है !
तभी तो वे चूल्हा जलाने के काम लिये जा रहे है !

बाक़ायदा दफ्तर चल रहे हैं !
ऑफिस आवर्स में
उस क्लर्क की कुर्सी पर जो रूमाल टँका है ना
वह इस बात का सबूत है
कि क्लर्क अभी कुर्सी पर ही है
मैटिनी शो में नहीं !

पूछ लीजिए, पूछताछ वाली खिड़की पर जाकर
उत्तरदायी, साहब के काम से कहीं गया होगा
आता ही होगा !
और जैसे सुबह का भूला
शाम तक घर लौट आने पर भूला नहीं कहलाता है
वैसे ही, ऑफिस खुलने पर चाय पीने गया बाबू
बन्द होने तक लौट आये
तो छुट्टी पर नहीं कहलाता है !
और फिर, साहब और उसका भी तो
कोई ह्यूमनिटेरियन नाता है !

अच्छा तुम्हीं बताओ
कि मैं फाइलों में उगाये गये गुलाबों से
अपने नासूर कब तक ढाँकूँ ?
कब तक स्लम्स् के कीड़ों को
नासापुटों में जाने से रोकूँ ?

और कब तक बँगलों की फाटक पर लगी
'कुत्ते से सावधान' की तख्तियाँ देख चौंकूँ ?

क्या वाकई हर बँगले में एक कुत्ता रहता है ?
यदि नहीं, तो मैं हक़-नाहक़ क्यों डर गया हूँ !
फिर वही पुनरावृत्ति-दोष
मौत से पहले क्यों मर गया हूँ ?

अच्छा ! आत्मा ही यदि परमात्मा है
तुम मुझे पूजते क्यों नही ?

दोस्त मेरे !
तुम मुझे गुमराह मत करो !
डिगरियों की वैसाखियों का आदी होकर
मैं जैसे चलना ही भूल गया हूँ !
और अब जब-जब मेरे पाँव फ़ासला मापना चाहते हैं
मेरे हाथ अनायास
इन वैसाखियों की ओर लपकते हैं
और मैं चाहकर भी
इस व्यवस्था के ठोकर नही लगा पाता
जिसने मुझे
पाँव होते पंगु बना दिया है !

योर्स फेथफुली

सेवा में
चीफ़ मिनिस्टर साहब

ख़ता माफ हो
लिखा नही इस बार अगर
थ्रू प्रॉपर चैनल !
क्योंकि खड़ा मैं आज सड़क पर
बॉस हमारे
एअरकण्डिशण्ड कमरे मे
बहुत बिजी है
बिना काम के
अपना वेतन पका रहे है !

मेहरबान !
सच आज आपने दिया बड़ा ही उम्दा नारा !
हड़ताल-काल में
काम नही तो वेतन नहीं !

माशा अल्ला !
ख़ता माफ़ हो
जरा बता दें मुझे आज कुछ कान्फिड्एन्शिली
काम आपने खुद ने कितना किया,
गये पच्चीस बरस में ?

ऑवर टाइम भाषण ही तो दिये आपने !
अगर आप की तरह
दिया इस खादिम ने
क्या गुनाह हो गया ?

क्या सचमुच ही भाषण देना काम नही है ?
काम नही तो क्या नेताओं ने अब तक हराम
का खाया ?
दौरे पर दौरे कर, टी. ए व्यर्थ उठाया ?

अक्ल आपकी
माशा अल्ला !
भरी धूप में गला फाड़ना काम नही है ?
ओनरेबल सर,
भूखे-प्यासे सड़क मापना काम नही है ?
रेस्पेक्टेड सर,
छोड़ गृहस्थी जेल भुगतना काम नहीं है ?
जनावे आली,
सिर फुड़वाकर (हड्डी पै सीलन-सा चिपका)
खून बहाना काम नही है ?
सर, एप्लाई था किया सिर्फ रोटी की ख़ातिर
व्यर्थ आपने गोली दागी !
अगर मुनासिब समझें
फाइल आप देख लें !
कन्सर्निंग अफ़सर को चाहे डॉट न मारें !

सर, अश्रु गैस बेकार छुड़ायी
अश्रु बहाना इन आँखों ने कब छोड़ा
पिछले वर्षों में ?

सर, छोटे मुँह कुछ बड़ी बात हो,
माफ़ी बख़्शें !

योर्स फेथफुली,
एक मुलाजिम किये दे रहा,
ख़ून सना अँगूठा चस्पाँ !

पुनश्च—
सर, एक बात फिर याद आ गयी
बुलट गुजर कर आँतों से खुद बुझ जाता,
पर भूख न बुझती !

सर, भूख नही टाँकी जा सकती
कभी पेन्शन की खूँटी पर !
सर, डिसिप्लिनअरि एक्सन
हरकत बहुत बुरी है !
सर,
भूखी आँतें डिसिप्लिन मे कब रहती है ?
तवारीख़ ऐसा कहती है !

वसन्त

वसन्त तुम्हारे बाग में आता होगा
मेरे तो वही में आता है,
मन तो उसी से
बाग-बाग हो जाता है।

आजादी गुनाह नहीं

'एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे !'
यह बात तो मेरी समझ में आती है
पर एकला जलो, एकला जलो, एकला जलो रे···
यह बात मैं जज्ब नही कर पाता हूँ !

क्योंकि खून जो पूर्वी बंगाल मे बह रहा है
वह मेरा खून है !
बंग-बन्धुओं के सिर पर जो सवार है
वह मेरा जनून है !
बेगुनाहों का खून
चाहे बगाल में बहे या वियतनाम मे
बोलिविया या क्यूबा में—वह मेरा है !
क्योंकि मैं बंगाली हूँ, वियतनामी हूँ
बोलिवियाई हूँ, क्यूबाई हूँ
उनका हमदम हूँ, उनका भाई हूँ !
उधार की गोलियाँ
जो ढाका की गलियों में धाँय-धाँय करती है
वे मेरे सीने से गुजरती हैं !
जिन आवारा टैंकों ने कल घरबार उजाड़े हैं
वह मेरा मोहल्ला है
तभी से मैं, बेघरबार डोल रहा हूँ
और मजबूरन आग की भाषा बोल रहा हूँ !

और किसी भाषा का
गला घोंटने की कोशिश
बचकाना है, वहशियाना है
क्योंकि, प्राणवान भाषा के शब्द
गुरिल्लों की तरह वार करते हैं।

मुक्ति-सैनिकों के लिए खुले
ब्लड-बैंकों में
मेरे खून के क़तरे न मिलें
यह नामुमकिन है !

मुक्ति का तानाबाना बुननेवाली ये अँगुलियाँ
मेरी ही अँगुलियाँ हैं।
जो कभी अँगूठी से निकलनेवाली मलमल बुनती रहीं
आज वे ट्रिगर पर हैं।
और ट्रिगर पर ही रहेंगी !
मटरगश्ती करते
आवारा टैंकों के बलात्कार से
खून से लथपथ बेहोश पड़ी सड़कों पर
मछलियों की तरह बिखरी आँखों में
एक जोड़ा आँखें मेरी भी है।
अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पिछलग्गू रेडक्रॉस
जिनकी तड़पन का अन्दाज देखने
'अटेन्शन' खड़ा है।
और रहम की आयतें पढ़नेवाला राष्ट्रसंघ
न्यूयार्क में नगीने-सा जड़ा है !

अपने सीने पर माइन बाँध
पैटन तोड़नेवाली रोशन पर
बंगाल के साथ मुझे भी नाज़ है
उसकी शहादत मेरी प्रार्थना है, मेरी नमाज़ है।

उसकी 'जय बांगला' के सामने
शंखध्वनि औ' अजान कितनी फीकी लगती है ?
क्योंकि यह उन करोडों मुजीबों की आवाज है
जिनकी हड्डियाँ घिसते-घिसते लावा बन गयी है !
और यह लावा
भूख के उस ज्वालामुखी का लावा है
जो बहुत कम धधकता है !
और धधकने पर बदल देता है इतिहास
जरूरत हो तो भूगोल !
यह ठीक है कि
बारूदी बैसाखियों के सहारे चलनेवाली तानाशाही
कॉलिजो को कब्रगाह बना सकती है
ब्लैक बोर्डो पर मजहब की इबारत लिख सकती है !
पर, आदमी
मजहबी चौखटो में फिट होनेवाली तस्वीर नहीं है !
जिसे कोई मनचाहे चौखटे में जड कर
क़ानून की कीलें गाड़ दे !
आदमी, अफ़सर के हाथ में दी गयी
नौकरी की अर्जी नही है
कि वह उसे भुनभुनाकर फाड़ दे !
और न वह है
हदे मख्सूस में चरनेवाला—
जानवर
कि हद से निकलते ही कोई गोली दाग दे !
यह ठीक है कि मजबूर आदमी
प्रश्न-चिह्न की तरह कमर झुका
जीता तो है !
पर, जब वह
रीढ़ की हड्डी सीधी कर, तन जाता है
तो तानाशाही का पूर्णविराम बन जाता है !
जिन्दगी की ग्रामर का यह नियम
तानाशाह नही जानते है

शायद इसी से वे भूख पै बन्दूक तानते हैं !
और इसीलिए हर चन्द वर्ष बाद
हमें इन दरिन्दों को
समझाना पड़ता है कि
इन्कलाब—मरी खाल की आह नहीं है !
दुनिया—कोई क़त्लगाह नहीं है !!
आजादी—कोई गुनाह नहीं है !!!

वोट देकर

तुम
दिल देकर पछता रही हो
मैं वोट देकर रो रहा हूँ
जम्हूरियत का भार
सिर पे ढो रहा हूँ !
तुम जब चाहो
अपना दिल वापस ले सकती हो
पर मैं दिया वोट
वापस नहीं ले सकता !
वोट देना
दिल देने से महँगा पड़ा है;
पर बेशर्म, चुनाव में
फिर से खड़ा है
चुनाव से पहले जो खादिम था
चुनाव के बाद
खुदा से भी बड़ा है !

नक्सलवादी

हमारी सरकार ने
तुम्हें पूजा का अधिकार दिया है
तुम पेट-पूजा का माँगते हो
यह क्या करते हो ?
ऋषियों की सन्तान हो
रोटी के लिए मरते हो !
पेटू औ' नास्तिक हो !
चरने के आदी हो
देशद्रोही हो
नक्सलवादी हो !

अकाल

आओ दोस्त,
धन्धा करें
अकाल पडा है
चन्दा करें।

यह कैसा मजाक है !

बहुत उपजाऊ हो गयी है
इस देश की धरती।
जहाँ अगणित बार
बलात्कार के बाद
अल्प-संख्यकों, गरीबों की हड्डियाँ
मिट्टी में गाड़ दी गयी हैं !
और सींच दिया गया है
बेगुनाह बच्चों का खून
धर्म के नाम पर
धरती माँ की गोद मे !
इधर-उधर
ग़रीब बस्तियों मे
जली हुई झोंपड़ियाँ
'भारत देखिए' के इश्तहार की तरह
हमारे महान देश की—
धर्म-निरपेक्षता का विज्ञापन कर रही हैं !
और निर्दोष नागरिकों की लाशें
कर रही हैं, अन्याय को रेखांकित !
आँखें इतनी कमजोर तो नही
कि दिन के उजाले में
दिखायी नहीं दे !
मजहबी नारों से माहौल,

वैसा ही रंगीन दिखायी देता है
जो रंग शीशे का होता है !
यह कैसा मजाक है
कि जो गाय का रोना रोते रहे
वे हरिजन की हत्या पर चुप रहे !
शायद इसलिए
कि उस निम्नवर्ण जन को
हरि तक
उन्हीं के सजातियों ने
पहुँचाया था !

कविता मेरे लिए

कविता तुम्हारे लिए क्या है
मुझे नही मालूम
मेरे लिए तो वह
अभिव्यक्ति का द्वार है,

तुम उसे
नये-नये प्रतिमानों के थर्मामीटर से—
नापने का दम भरते हो
जैसे वह भी कोई
मियादी बुखार है,
गोया तुम कोई डाक्टर हो
और कवि कोई बीमार है !

कविता गम की बेटी है
जो गम की ही गोद में सो सकती है
मचलने-भर से वह खुशी की बेटी
—नही हो सकती है
क्योंकि
कविता का जन्म
राजमहलों में, प्रासादों में नही
गली-कूचे, फुटपाथों पर हुआ है
और राजमहलों में जन्मी-पली

— बनी-सँवरी कविता ने
आलोचकों और महाजनों को
आकर्षित भले ही किया हो
हमारे दिलों को नहीं छुआ है !

पहला कवि नहीं हूँ

मैं इस बात के लिए 'सॉरी' महसूस नही करता
कि जिन्दगी के तंग फुटपाथ पर
मेरी कुहनी तुमसे टकरा गयी है।
और न मैं पैन माँगने के लिए
दाँत निपोर कर 'प्लीज़' कहता हूँ
शायद तुम इसे अशिष्टता कहो!
शर्म से तो मैं वैसे ही गड़ा जा रहा हूँ
मगर इस बात के लिए नही कि मैं 'सॉरी' या
'प्लीज़' नहीं कहता
सिर्फ़ इस बात के लिए
कि मैं तुम्हे रोटी दिलाने-खातिर कानून नही
तोड़ सका
यह ठीक है कि
"ब्लो हॉट, ब्लो कोल्ड"
देखने के बाद राष्ट्रीय धुन पर चट खड़े होकर
वे जिस राष्ट्रभक्ति का परिचय दे सकते हैं
वह मैं नही दे सकता!
मेरी कमर में वैसी राष्ट्रभक्ति की 'स्प्रिंगें' कहाँ लगी हैं?
खड़ा होना तो दर-किनार,
मैं समझ गया हूँ कि दर्शक-दीर्घा मे—
बापू के बन्दर-सा बैठने से कुछ नही मिलनेवाला है
जब तक सेठों की तिजोरी पर समाजवादी ताला है।

फिर तुम्हीं बताओ
कि मैं राष्ट्र प्रेम के गीत कब तक गाऊँ
कब तक गा-गाकर घावों को सहलाऊँ
कब तक दिल मे इश्क को जगह दूँ
और खुद स्लम्स की मोरी पर शरणार्थी बना पड़ा रहूँ !

नहीं, नही ! तुम मुझे फिर गुमराह मत करो
आहों में मीठे गीत मचलते होंगे
पर मेरे बच्चे भी तो दूध के लिए मचलते है
उनकी भूखी आँतों को कब तक चन्दामामा की—
लोरियाँ सुनाऊँ
जो अर्से तक सुना चुका हूँ
हलरा-दुलराकर भूखे सुला चुका हूँ !
लोरियो की अप्सराएँ दूध के कटोरे लिये
तुम्हारे बँगलों और तुम्हारे कुत्तों के लिए
तुम्हारे बँगलों पे आयी होंगी,
मेरे बच्चों को तो उस दूध की खुशबू भी नही आयी।
'वियोगी होगा पहला कवि'
पर मैं पहला कवि नही हूँ
मै आखिरी रोगी कवि हूँ
और करना चाहता हूँ
बिना स्टरलाइज किये, इन्फैक्शस शब्दो का प्रयोग
ताकि इनकी छूत कुछ तुम्हे भी लग सके
बार-बार हर करवट पर चीखना चाहता हूँ
कि तुम्हें भी कुछ तकलीफ हो
और तुम्हारी नीद ही नही
नीद की झपकी तक उड जाए
और काव्य के इतिहास में (एक) दूधिया पृष्ठ
जुड़ जाए !

दूसरों की रोटी के लिए

तुम !
हाँ तुम !
पड़ोसी के मुंह से रोटी छिनते देख
इश्क की ओट कैसे छिप जाते हो ?
एक वे है,
जो पड़ोसी बच्चों के दूध के दाँत तोड़ने पै आमादा हैं
एक तुम हो,
जो बेखुदी में सोचते हो
दुनिया में तुम हो, तुम्हारी मादा है !

पर यह सही मानो—
कि जो दूसरे की रोटी के लिए नही लड़ सकता
वह इश्क के लिए भी नही मर सकता !
फिर इश्क के लिए मरने और इश्क का फ़लसफ़ा बघारने में
बड़ा फ़र्क होता है।
ज़िन्दगी का बेड़ा, मझधार ही नही
किनारे भी गर्क होता है !
तुम्हारा, आदमक़द शीशा टूट गया, तो क्या ?
तुम्हारे पड़ोसी की आँखों में, आँसू तो हैं
तुम, उन्ही मे अपनी शक्ल देख लो !
और शक्ल, आँसू में जितनी साफ दिखायी देती है
शीशे में भी नही दिखायी देती।

दोस्त मेरे !
आँखें, सिर्फ महबूबा से ही, नहीं मिलायी जातीं
हक़ीकत से भी मिलायी जाती हैं।

पर हाँ,
हकीकत से आँखें मिलाने में, बड़ा दर्द होता है
यूँ तो हर कोई आदमी, घर में मर्द होता है !!
गरीब के पेट पर लात पड़ते देखकर भी
जब तुम इश्किया लहजे में गुनगुनाते हो
तो मुझे लगता है
कि मनोरंजन, सिर्फ मनोरंजन करना ही
तुम्हारी नियति है !

ज़ुबाँ की चोट

लो सुनो
एक गौरैया चहचहाने लगी है !
मैंने गलत कहा,
वह गजल गुनगुनाने लगी है
आँतों का दर्द बातों से भुलाने लगी है।

आसपास इकट्ठे ठूँठ
सिर धुनने लगे हैं
कहने लगे हैं—मुकर्रर, इरशाद
पीटने लगे हैं वाह-वाह की लीक
मुँह में भरे पीक !

गौरैया आज बेहद खुश है
कि उसने एक गज़ल गुनगुनायी
और भरपूर दाद पायी
आज का मुशायरा उसने लूट लिया !

पर तरन्नुम की बेखुदी में वह भूल गयी
कि घोंसले में बच्चे
दानों का इंतज़ार कर रहे हैं
सुरीली आवाज़ आँतों से सुन रहे हैं !

मतला अर्ज़ करते-करते
अँधेरा गहरा गया है
औ' रात हो गयी है !
रात, एक सियाह लम्बी रात
जैसे ज़ुल्म की यादों की बारात।
अब तो दाने ख्वाब में ही मिलेंगे।
पर यह क्या माजरा है
कि उसकी गजल से
किसी की नींद नहीं उडी
न दरख़्त की, न बाज की
यह कैसी आवाज थी ?
कैसा रदीफ़ था
कैसा था काफ़िया
क्या मक़्ता ही ग़लत बुन लिया था ?
या मिसरा ही ग़लत चुन लिया था ?

यह कैसी आवाज़ थी
कि न भूख ही मिटी
न हक लिया दाने का
गोया दाद दाद न हो
बहाना हो बहकाने का !
इच्छा होती है
कि घोंसलेवालों से कह दूँ
जरा आँख खोलो,
ज़रा पंख फड़फड़ाओ।
छिन गया हथौडा
तो ज़ुबाँ से आघात करो !

क्योंकि हथौड़े से भारी होती है
ज़ुबाँ की चोट
गर कोई करना जाने
नही तो कविता या ग़ज़ल, क्या माने !

महल-झोंपड़ी-संवाद

एक अँधेरी रात में
छप्पर खड़खड़ाने से
बूढ़े महल की नींद हराम हो गयी
और, उसने कड़क कर झोंपड़ी को डांटा—
क्यों बे, तू चुप नहीं रह सकती ?
क्या दान का आटा अपच कर रहा है ?

झोंपड़ी ने कहा—
अन्नदाता ! मेरी क्या गलती है ?
गरीब की कहाँ चलती है ?
मैं तो पीढ़ियों से हूँ हजूर की गुलाम,
हवा का रुख ही हो गया है वाम !
इससे हजूर !
यह कन्धे चढ़ा छप्पर खड़खड़ाता है !
आप नाहक सोचते—बड़बड़ाता है,
मेहरबानी कर इस हवा को टोकिए,
इसी को रोकिए !
और हजूर !
कल यह आप से टकरा जाय
तो आप ना करें क्रोध
समझ इसे विरोध !
यह तो यूँ ही बकता है

हवा को कौन रोक सकता है !
और हजूर !
यह नासमझ बकता है—
वक्त का तक़ाज़ा है
कौन किसका राजा है !
पुरवैया की हमदर्दी में
यह थोडा-सा हिल गया है
मजलूमों के साथ मिल गया है।

हजूर मेरी मानें,
तो सन्तरी को खबरदार कर दें
और डोंडी पिटवा दें—
अन्नदाता-पैलेस अभी आराम फरमा रहे है,
न कोई हिले
न कोई बोले
खामोश रहें गोले !
इस बार महल ने मूँछें ऐंठ, सन्तरी को डाँटा
बोला—साली इस हवा को गोली मार दो
यह छिनाल होकर के वाम
कर रही नींद को हराम !
महल ने रोब से प्रहरी को पुकारा
पर वह तो
पहले ही कर चुका था किनारा !
महल कुछ बुदबुदाया, फिर ऊँघने लगा
करवट बदलती मिट्टी को सूँघने लगा
रटने लगा—'हरे कृष्ण हरे राम'
कैसी हवा चली है वाम !

तानाशाह

बच्चे
जब चाहें खिलौने तोड़ दें
पागल जिसका चाहे सिर फोड़ दें
तानाशाह
जिधर चाहें टैंक मोड़ दें
वे सब एक-से होते हैं !
बचपन को माफ किया जा सकता है
पागलपन पर रहम खाया जा सकता है
उसका इलाज कराया जा सकता है
पर लाइलाज तानाशाही को
दफनाया ही जा सकता है

बच्चा जब नंगा होता है
लोग उसे चिढ़ाते हैं
पागल के नंगे होने पर मुस्कराते हैं
पर तानाशाह के नंगा होने पर
निर्दोष मारे जाते हैं,
चुप्पी, महज चुप्पी की सजा पाते हैं।
क्योंकि तानाशाह
भले ही कुछ समय के लिए ही
सुबह की सुर्खी को सियाही में बदलने
कब बारूद उछालने लगे

कर दे किन नदियों के पानी को लाल
कौन रोक सकता है !
कब फूल चुनना छोड़
बच्चों के सिर चुनने लगे
कलियों को खिलते देख
खुश होने की जगह
बहिनों को नंगा कर मुस्कराने लगे
सितार की सरगम को रोक
संगीनो पै गाने लगे
कौन रोक सकता है !

जब निरीह पथराई आँखों का मोह
जग जाये उसके दिल में
कौन रोक सकता है !
लेकिन, अपनी क़ब्र
खुद खोदता है तानाशाह
फावड़ों से नही
संगीनों की नोकों से
जनता के हाथों से होता है
एक दिन दफन
बिना आँसू, बिना कफ़न।

सही कदम

सच मानो
वे सही समय
सही कदम उठायेंगे
चाहे कोई हो
नहीं घबरायेंगे !
पर कदम उठाने
वे कुर्सी से उठें
तो उनकी कुर्सी का क्या होगा ?
आप उन्हें
इतना तो बतायेंगे।
तभी तो वे
सही कदम उठायेंगे।

गोल्डमेडलिस्ट

जब-जब मेरे दिमाग में
यह बात टकराती है कि
आजादी के लिए
फाँसी के तख्तों पर—
झूलनेवालों में
एक भी
गोल्डमेडलिस्ट नहीं था
तो मेरा दिल काँप जाता है
और दिमाग
देश के भविष्य को—
भाँप जाता है।
शायद
वे गोल्डमेडलिस्ट लोग
तब सपना देख रहे होंगे
देश-सेवा का नहीं
मुक्ति-मेवा का !

सवाल लाजवाब

मेरी बच्ची ने पूछा
कि बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
ये सभी तो धर्म है !
और यह ठीक भी है
इनकी अपनी-अपनी लीक भी है
इनके शास्त्र भी है—
ग्रन्थ भी है
महंत भी है, संत भी है
फिर मानवधर्म का प्रवर्त्तक कौन था ?
मैं अखबार में आँखें गड़ाये मौन था
मेरे मौन का कुछ राज था
शायद सवाल लाजवाब था।

अक्कड़-बक्कड़

अक्कड़ - बक्कड़ बम्बे बो
भाग्य-भरोसे तू मत सो।

अपना तो है ऐसा नेता
सब कुछ खाता हमें न देता
जनता रोती तो वह कहता
बोझ हमारा भी तू ढो।

लेने वोट किया था वादा
जीता तो बन गया शहज़ादा
जिसे भेजते हम कुछ कहने
वह जाता संसद में सो।

जनता जिसके खातिर दौड़ी
वह फकीर बन गया करोड़ी
फुटपाथों पै रोते वोटर—
'पूछे कौन हमारे को।'

हाथ लम्बे कहाँ ?

मोरारजी भाई ने
ठीक ही कहा है
कि 'मैं जब-जब गलती करूँ
आप मेरे कान खींचियेगा !'
पर मेरे हाथ इतने लम्बे कहाँ हैं
कि मैं उनके कान खींच सकूँ !
इसलिए मैं अपने ही—
कान खींच रहा हूँ
क्योंकि
मैंने उन्हें वोट दिया था !

शबनम

शबनम
जो फूल की नाजुक-नाजुक पंखुडी पर भी
मेहमान रह् पाती है
चन्द लम्हों तक
फिर सूख जाती है,
मैंने उसे अपनी जवान हथेली पर
सजाये-उठाये रखा है
इतने लम्बे अर्से तक
पर कोई भी हथेली
उसे कब तक
सजाये रख सकती है
एक लम्बे अर्से से ज्यादा
जब फूल की पंखुडी पर
पड़ी-पड़ी भी वह
सूख जाती है
चन्द लम्हों में !

याद तुम्हारी

सोच रही हो तुम
कि मैं भूल चुका हूँ तुमको अब तक
और व्यस्त हूँ।
लेकिन यह है भूल तुम्हारी
तुम्हें याद रखने को ही तो डूब चुका मैं
याद तुम्हारी कायम रखने
डूब चुका मैं—
युद्ध सर्वहारों का लड़ने
उसी युद्ध मे पूरे मन से
अपनेपन से
क्योंकि युद्ध जो बार-बार हम रहे हारते
उसे बदलना ही तो होगा कभी जीत में !

मुझे कभी भी लगा नही
मैं बिछुड़ा तुम से
मानूँ कैसे
मुझे नहीं है याद तुम्हारी !
मिलने का अवसर ना होना
है मजबूरी या लाचारी
इसलिए

जब तक मैं लड़ता रहूँ समझना
हर पल मेरे साथ
जी रही याद तुम्हारी !
क्योंकि सर्वहारा हैं अपने
तुम्हें पता है मेरे सपने !

बेहद प्यार

आज
न तुम्हारा नम्बर डायल करना चाहता हूँ
और न पत्र-बम फेंकना
जानती हो क्यों !
सिर्फ इसलिए
कि मुझे तुमसे बेहद प्यार है
जिन्दगी, सच कितनी लाचार है !

कुर्सीपूजक

कुत्ते मनुष्यों के पाँवों को चाट सकते है
लेकिन कुछ मनुष्य
कुर्सी के तलुवे भी चाट सकते है !
और
वे जो कुर्सी के तलुवे चाट सकते हैं
वे किसी के भी पाँव चाट सकते है
और स्वार्थवश काट भी सकते हैं
कुत्तों की तरह !

आदमजाद होकर भी
'कुत्ते से सावधान'
की तख्तियाँ लगाने का रिवाज
बहुत पुराना हो गया है
अब तो 'चापलूसों (कुर्सी-पूजकों) से सावधान'
की तख्तियाँ लगायी जानी चाहिए !

इन्तजार

मैंने तुमसे ज्यादा
सिटी बस का इन्तजार किया है
फिर कैसे कह दूं
मैंने तुम्हें प्यार किया है !

आमरण अनशन

कायर मरते हजार वार
वीर मरता एक वार
तो, मैं भी बस एक वार मरूँगा
पर आमरण अनशन हजार वार करूँगा।

हाथों की रेख

नजूमी !
तू किसी अमीर का हाथ देख
घिसती नही निठल्ले हाथों की रेख !
मेरे हाथों ने गेंती की पीठ को सहलाया है
मैंने मैम साहिबा को नही
तगारी को सिर उठाया है
घिस गयी है उससे
मेरी किस्मत की रेख !
नजूमी !
तू किसी अमीर का हाथ देख !

ज़मीन, ज़मीन होती है

शबनम बहुत नाज़ुक हसीन
होती है
ज़मीन लेकिन जमीन
होती है !
उसके चाटे से
प्यास नहीं बुझती
यूँ तो वह
बेहतरीन होती है।

वह भूत नहीं भविष्य है

तुम क्या समझते हो
कि स्कूल के खेल के मैदान
गाँव के कुएँ में सड़ती युवती की लाश में
कोई सम्बन्ध नही होता
हकीकत में सम्बन्ध तो उन्ही में होता है
ज़िन्दा आदमी के बीच तो सिर्फ स्वार्थ होता है
तुम इक्वेशन को समझो
यह ज़िन्दगी भी ऐसी थ्योरम है
जिसकी सही-सही परिभाषा
तुम समझने में भूल कर रहे हो।
खून का सम्बन्ध तो वास्तव में उन्हीं का है
क्योंकि खून उन्हीं का किया गया है !

शिलान्यास तो वहाँ करना चाहिए
जहाँ उसकी लाश गड़ी है
और लिखा जाना चाहिए कि यह लाश
अमुक-अमुक के कर-कमलों से हुई थी
ताकि आनेवाली पीढ़ियाँ देख सकें
हमारी बेशर्म हरकतों का इतिहास
क्योंकि गरीब के 'हाम की इति' यहीं हुई थी
ठीक इसी जगह !

तुम ज्यादा से ज्यादा एक एफ. आई. आर.

दर्ज करा दोगे, पुलिस की फ़ाइल में
कि अमुक जगह, एक लावारिस लाश पायी गयी थी
पर मित्र मेरे !
साक्षी के अभाव में उसे पुलिस केस भी नहीं बना पाओगे
क्योंकि चश्मदीद गवाह तुम्हें अब कब मिलेगा !

और समझदार माँ-बाप उस भूत के डर से
अपने बच्चों को तावीज बाँध, स्कूल भेज देंगे
अध्यापक नहीं समझायेंगे
यह बिना समझे
कि जो बिना मौत मरा था
वह भूत नहीं
देश का अंधकारमय भविष्य हो गया है !

तीन हाइकु

एक बूंद ने
चमक दूर से
प्यास जगा दी !

°

बूंदें टपकी
मन हरषा कर
वाष्प हो गयी !

•

जीवन जैसे
तपे बदन पर
टपकी बूंदें !

लॉटरी ब्राण्ड समाजवाद

आजकल
मेरे देश के लोग
लॉटरी से लखपति बनने लगे हैं :
कल लॉटरी से
ससद सदस्य बनने लगे
तो ताज्जुब नही करना चाहिए।
और हो सके तो
समाजवादी नीति-निर्धारण भी
लॉटरी से करना चाहिए
आखिर इस भूखे प्रजातान्त्रिक देश के
लॉटरी ब्राण्ड रहनुमाओं को
ईश्वर से भी तो डरना चाहिए।
और दबी जुबान कहना चाहिए—
"जिसने दाँत दिये, वह दाना देगा
जिसने मुँह दिया, वह खाना देगा।"

आखिर समाजवाद को हमने
विकल्प के रूप में नही
शिल्प के रूप मे स्वीकारा है !

षट्दर्शनों में,
समाजवादी दर्शन कहाँ हैं !

वह तो महज चुनावी नारा है !

सर्वजीता

मैंने माना
कि मैं तुम्हें बहुत-बहुत प्यारा हूँ
राजदुलारा तो नहीं
लेकिन दिल दुलारा हूँ
ठहरो
मुझे तुम सर्वजीता बनने दो
अभी मैं—
सर्वहारा, सर्वहारा, सर्वहारा हूँ !

वेइंग मशीन पर

दुनिया की वेइंग मशीन पर
वर्षों खड़ा रहा
पर बावजूद इन्तजार के
टिकट नहीं निकला !
मैं
उसकी जेब में
सिक्का डालना भूल गया था !

हिट लिस्ट

राजनीति से 'हिटलिस्ट' में
नाम आते देख
उन्होंने ख़बरनवीसों को बुलाया
और समझाया
कि उनका नाम हिटलिस्ट में—
सबसे ऊपर आ गया है !
अब उन्हें कौन समझाए
कि हिटलिस्ट में सबसे ऊपर तो
—इस देश का नाम है
जो साम्राज्यवादियों का असली निशान है;
जहाँ के लोग बँटे हैं,
बँट सकते हैं
आप इतिहास के पन्ने पलट सकते हैं !

पाँच हाइकु

देश में कोढ़
लो गांधीनामी ओढ़
जीना चाहो तो।

o

मरा करते
लड़की, धरती पै
सिर्फ जवान।

o

वचन दिया
मगर न आ सकी
मौत आ गयी।

o

रिश्ता कोई
रास्ता नहीं होता
कि नाम हो ही।

o

मेरा तुमसे
कोई रिश्ता नहीं
अपनत्व है।

दो शे'र

मैं मुसाफिर की तरह तेरे दिल में आया था,
हमारी राह तो सहरा की तरफ जाती थी!

तेरी यादों के बादलों की वजह ही हमने,
जिन्दगी धूप के फुटपाथ पै गुजारी थी!

ग़ज़ल

वे चीखते है जोर से ले आये हम सहर
तब क्यो अँधेरा रात-सा छाया हुआ-सा है।

तारीफ करें बाजुओं की हम तुम्हारे क्यों,
यह जुल्म तो हर दौर में ढाया हुआ-सा है।

दस्ताना पहन, कर रहा है तू अमन की बात
पर दस्त तेरा खूं से नहाया हुआ-सा है।

महताब आसमां मे लगता है यूं मुझे,
रोटी का टुकड़ा सिर पै लटकाया हुआ-सा है।

कुर्सी पै बैठा जो, मुझे पहचानता नहीं,
वोटों की गरज घर मेरे आया हुआ-सा है।

हँसता हुआ-सा दिख रहा बाहर जो बूथ के
लगता है वोट दे के पछताया हुआ-सा है।

तुम कह रहे, इस गीत को लिक्खा अभी-अभी,
क्यूं लग रहा सौ मर्तबा गाया हुआ-सा है।

जागते हुए सपने

तुम मेरी रफ्तार से आशंकित हो
मेरे फलसफे से आतंकित हो !
पर जरा सोचो तो सही
कि एकाध सलीब हो
तो उसे कन्धे पे उठा लूं
जिन्दगी कोई रिकार्ड हो
तो हर प्लेअर पे बजा लूं !

यह ठीक है कि मेरे हर कदम पे
सलीब गडी है
पर इन सलीबों के डर से
मैं सपनों को रेहन कैसे रख दूं !
आखिर ये मेरे सपने हैं
जो वियतनामी गुरिल्लों से
मरके भी जीना जानते हैं
लेकिन किसी तानाशाह के
आदेश नहीं मानते हैं !

यादें

ना जाने कितनी यादे
मेरे मन के आकाश में
मौसम-बे-मौसम
नन्हीं-नन्ही बदलियों-सी
उमड़ती हैं
घुमड़ती हैं
किन्तु उनमें से कुछ ऐसी भी है
जो जब-जब घिर आती है
तो जीवन छितराती हैं
मरुस्थल में दबे
सूखे बीजों को पुन.
सरसा जाती हैं
ना जाने कैसे
ये छोटे-छोटे अंकुर
अंकुर से पौधे
पौधे से पेड़ बन जाते हैं
लहलहाते है
मन में उपवन का भ्रम उपजाते हैं
और पल-भर में मिट जाते हैं !
मन फिर मरुस्थल-सा
सूखा का सूखा

वीरान का वीरान !
काश, इन यादों की बदलियों पर
मेरा काबू होता
तो इनके साथ
काहे को हँसता काहे को रोता !

जो तुमने दिये थे

शब्दों के सुमन
जो तुमने दिये थे
शब्दों के शूल भी तुमने दिये थे
दोनों को पाकर मैं समृद्ध हुआ
शब्दों के सुमनों की महक
अभी बाकी है
शूलों का क्या ?
शूल ही तो थे
बिना सुरभि के
चुभ कर लहूलुहान कर
छोड़ गये याद-भर
एक कसक चुभन भर दी :
शब्दों के सुमन
जो तुमने भेजे थे
पन्नो के पुटों में बन्द करके
सूखकर भी महक रहे हैं !

अपनी ही आँखों में

आज फिर, जब तुम्हें देखा
तो अनायास
दर्पण में अपनी सूरत निहारने लगा
सिर्फ अपनी ही आँखों में झाँकना
शेष रह गया है आज
तुम्हारी सूरत को ठीक-ठीक करने याद
इतने दिनों बाद !

मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ?
कि आँखों की रोशनी कम पड़ने के बावजूद
उनमें तुम्हारा वह बिम्ब
ज्यों-का-त्यों कायम है।
मुकम्मल है तुम्हारी याद
इतने दिनों बाद !

खुद से फिर करने लगा हूँ बात
तुम्हीं से बतियाने
कितने अजीब होते हैं
जीने के बहाने !

ज़िन्दगी का लेखा

मैंने तेरी अलकों को नहीं
अपनी उलझनों को सुलझाया है !
अपने बच्चों को नहीं
साहबजादों को दुलराया है !
तब तुम्हे मुझसे
शिकायत होना वाजिब है
जब साहब को भी शिकायत है !

मैंने प्रेम-पत्र नहीं
आवेदन-पत्र लिखे है !
तेरी आँखों का नहीं
साहब की आँखों का रंग देखा है
यही तो मेरी ज़िन्दगी का लेखा है !

घर से जाने से पहले
जब-जब तेरी आँख भर आयी
मैंने साहब की डाँट खायी है
यही तो मेरे जीवन की कमाई है !
तू माने, न माने, सच कहता हूँ
जीवन-संगी तेरा
साहब के संग रहता हूँ।
कामचोर ही होता

तो बंगले पर काम क्यूं करता ?
बेहया होता तो मेम-साहब से क्यूं डरता ?

तू जब-जब रोती है
बरसाती मोती है
शिकार तो मेरी ही 'केजुअल लीव' होती है !
नौकरी जो भी करता है
कहलाता नौकर है !
गरीब की ज़िन्दगी
क्या साहब की ठोकर है ?

वसन्त क्या आया है

वसन्त क्या आया है !
नये स्नैप्स कुछ लाया है !

ये नन्हीं-नन्ही कलियाँ
टहनियों के सिर चढ़
यूँ झूलती हैं
जैसे मम्मी के कन्धे चढ़
लाड़ली बच्चियाँ
घमण्ड से फूलती हैं !

उमंगते ये ढीठ फूल
कलियों से जा टकराते हैं
धीरे से 'सॉरी' कह
कहकहे लगाते हैं !

ये टहनियाँ ही
जवान नही हो गयीं हैं
ढीठ गेंदे के 'रिमार्क' से
कलियाँ भी ब्लश हो गयी है !

हवा के झकोरे मिस
पत्तियाँ क्या सरसराती है

जैसे अनाड़ी के 'क्लास' में आने पर
'क्लास' की 'क्लास' तालियाँ बजाती है !

जूही की कली पर
शबनम का पानी जो छा गया है
मानो 'ब्वॉय फ्रैण्ड' से
पहली बार बतियाने पर
लड़की को पसीना आ गया है !

कलियों के बीच
भौंरा क्या गुनगुनाता है
जैसे कोई नया-नया लेक्चरर
क्लास में हकलाता है
झेंप मिटाने, बड़बड़ाता है !

मेरा कुसूर

एक वार मैंने
ठूंठ को ठूंठ कह दिया।
तव से वह मेरा दुश्मन वन गया
और वक्त गुजरते-गुजरते
कुछ ज्यादा ही तन गया

और जव मैंने पौधे को पौधा कहा
तो वह मेरी तरफ
झुक-झुक आता
हाथ हिलाता
फल वरसाता !

मैंने जो देखा था
फकत वही तो कहा था
आप ही वतायें
मेरा कुसूर कहाँ था !

तव से मैंने मान लिया
ठूंठ को ठूंठ कहना निन्दा है
और मैं एक निन्दक हूँ
पता नहीं कवीर ने क्यों कहा था
'निन्दक नियरे राखिए

आँगन कुटी छवाय'
कबीर आज होता
तो अपनी किस्मत को रोता !
आज ठूँठ को ठूँठ कहना
निन्दा है, गाली है
समझदारों ने
क्या तरकीब निकाली है
क्या वाकई ठूँठ को ठूँठ कहना झूठ है
क्योंकि वह ठूँठ है !

प्रजातन्त्र में

तुम मुझे
सेठों की तिजोरी का ताला बना
लटका देना चाहते हो !
पर ऐसे तालों पर
मजदूर की एक चोट हूँ मैं
प्रजातन्त्र में
समझ से दिया वोट हूँ मैं !

वर्षा

वर्षा के मिस
साफ करने
सड़क की स्लेट।
छींटे जब डाले
मौसम ने।
गायब हुए
स्लेट से—
अ से अमीर
ध से धनी
म से महाजन
लेकिन
ग से गरीब
म से मजदूर
अभी भी अंकित हैं
वर्षा से
आशंकित हैं

शरद पूनो

शरद पूनो के बहाने
रजत स्प्रे हो गया
भू पर अमिट !
कि जैसे वित्त-मन्त्री ने
नये कानून द्वारा
आज कर दी
ब्लैक-मनी व्हाइट !

फिर वसन्त आया है

सुना है
वसन्त फिर आया है !
फिजा से तो नहीं लगता
ताजगी कहाँ लाया है ?
कलेण्डर ने बताया है—
—फिर वसन्त आया है!

वरना दुधमुँही कलिकाओं की उदास शक्लें
तो जैसे बताती हैं, समझाती हैं
कि नई पीढ़ी बेहद उदास है,
खिन्न और हताश है !
आस-पास की ज़मीन भी तो सूखी है
नई पौध
जैसे प्यासी है, भूखी है !
पर हाँ, बूढ़ी अमरबेलियाँ तो पसर रही हैं
फल-फूल रही हैं
नई पीढ़ी के सिर पै झूल रही हैं !
इन अमरबेलियों का बोझ
दुधमुँही पौध ढो रही है ।

मौसम तो बदला है,
पर गुलाब ने गेंदे को

शुभ-कामनाएँ नहीं भेजी हैं
कहता है, 'तुम्हारी भाषा हिन्दी
—मेरी अंग्रेजी है।'
कानाफूसी बता रही है
कि जाति-धर्म की क्यारियाँ ऐंठी पड़ी है
हदों के लिए लड़ रही है।

हर नया अंकुर गम में डूबा है
कह रहा है—
'यह तुम्हारा प्रान्त है
यह हमारा सूबा है।'

खटका तो हुआ है,
ज़रा देखिए कोई आया है
दस्तक भी है, दरवाजा खटखटाया है
कौन, बसन्त
या बस-अन्त
आस-पास तो मातम की छाया है
सुना है, फिर बसन्त आया है !

सर्पविरोधी गीत

दरअसल तुम्हें
न आदमी की पहचान है
न सर्प की !
आहट से जो सर्प
घुस गये हैं बिल में
निश्चित वे नहीं हैं महफ़िल में
पर इसका अर्थ, यह तो नहीं
कि वे मर गये हैं
फकत इसलिए कि वे डर गये हैं !

वे कार्यालयों की फाइलों
औ' विश्वविद्यालयों की किताबों में—
दुबक गये हैं।
तुम उनके निकलने से बनी
लकीरों पर लाठियाँ बजाते रहो
या फिर गोष्ठियों में
सर्पविरोधी गीत गाते रहो !

दो छोटी कविताएँ

कुर्सी

कुर्सी
पहले कुर्सी थी
फ़कत कुर्सी
फिर सीढी बनी
और अब
हो गयी है पालना
जरा होश से सम्हालना !

भूख से नहीं मरते

हमारे देश में
आधे से अधिक लोग
गरीबी की रेखा के नीचे
जीवन बसर करते है
लेकिन भूख से
कोई नही मरता
सभी मौत से मरते हैं
हमारे नेता भी
कैसा कमाल करते हैं !

नाइट लैंप

तुम्हारी यह शिकायत वाजिब है
कि मुझे तुम्हारे साथ—
हमदर्दी नहीं है
जो एक जलने वाले को
जलने वाले के साथ होनी चाहिए
चूँकि एक जलनधर्म के नाते
हम हमदर्द हैं
नपुंसक नहीं मर्द हैं
....

हालाँकि एक तुम्हीं तो हो
जो रात-रात जलते हो
शाम से सुबह तक
अँधेरे को अँधेरा रखते हो—
हरते हो . ।
बगलों में
पलँगों की अगल-बगल
तुम्हीं, सिर्फ तुम्हीं जलते हो !
बड़े-बड़े, सभ्य, शिक्षित, सुसंस्कृत
शिष्ट, संवेदनशील, सुकोमल लोगों की
कानाफूसी, हँसी-मजाक, दु:ख-सुख
रति-विलास की आई-विटनेस
चश्मदीद गवाह

एक तुम्हीं होते हो !
तुम हो तो उनके दु ख-दर्द मे
—रोते हो !

दिखाते हो अँधेरे में चेहरा
अधरों की मुस्कान
और तुम्हारे से ही तो कटती है
वड़ों की रात
सच कितनी बडी वात—!

नरक बेहतर है

मैं बचपन से चिन्तित था
कि स्वर्ग किस तरह पहुँच पाऊँगा !
पर जब पढ़-लिखकर
मंदिर, कॉलिज, धर्मशाला में लगी
'स्वर्गीय सेठ की स्मृति में निर्मित'
संगमरमर की तख्तियों को पढ़ा
तो मैंने तय कर लिया
कि जहाँ ऐसे लोग गये है
मैं उस स्वर्ग में हर्गिज नही जाऊँगा।
ऐसे स्वर्ग से तो नरक बेहतर है
स्वर्ग मे सेठ
और नरक में मेहतर है !

दाँयें-बाँयें

मैं तुम्हे कैसे समझाऊँ
फूल की गन्ध
रंग से कैसे बतलाऊँ ?
भई जो दाँयें दौड़ता है
वह बाँयें नही दौडता
और जो दोनो तरफ दौड़ता है
वह दौडता लगता तो है
पर हकीकत में दौडता नही
खड़ा रहता है, खड़ा
तटस्थ मनोवृतिवाले समाज में
वही सबसे बड़ा
वही रहता है
तेरे-मेरे कंधों पे चढ़ा
इसी से दौडता नजर आता है
दुनिया का इतिहास
यही तो बताता है
सबसे ज्यादा खतरा उसी से होता है
उससे नही
जो बोझा ढोता है ।

ऐसे कीमियागर हैं वे

तसल्ली हो गयी ना तुम्हे।
हो गया ना मन को सन्तोप।
पड़ गया ना ठण्डा रोप
उसे अचानक मार काट कर फेंक
उसे, जो कल तक
तुम्हारा पड़ोसी था
या पड़ोसी का पड़ोसी
या जला देने से उसे जिन्दा
पेट्रोल छिड़क कर,
उसे, जिसे तुम
जरा भी जानते तक नही थे
कि वह कौन है
क्या है उसका नाम?
फूंक—डाला ना उसे
फ़कत इसलिए कि तुम अन्धे हो गये थे—
—जोश में

या बना दिया था हिंस्र पशु तुम्हे
उनके जादू ने थोड़ी देर के लिए
इन्सानी वेश में!
क्या मिला तुम्हें
खत्म कर देने से उसकी जिन्दगी

जिसे, तुमने नही दी थी उसे
तब तुम्हें लेने का अधिकार
किसने दे दिया ?
संविधान ने, धर्म ने, या विदेश ने ?
फकत एक अज्ञान या अन्धे जोश ने
कि तुम आज उसे मार देने की स्थिति मे हो
मन की तसल्ली के लिए !

उसने तुम्हे तो नही था मारा
फिर तुम्ही ने उसे क्यो मारा ?
क्या फकत इसलिए
कि उसके जैसे दिखनेवाले किसी ने
किसी को, किसी तरह, किसी के कहने से
मारा था
अपनी बेवकूफी में
वहशीपन या जगलीपन से,
और तुम भी बौने न दिखने की खातिर
शहर मे रहते हुए भी
वहशी और जंगली हो गये
पढ़ते हुए, चाटते हुए, वे सारे के सारे ग्रन्थ
इंसानियत, प्रेम और करुणा के उपदेश —
—बघारने वाले पोथे
रहे ना थोथे के थोथे ।
क्या वे इसीलिए लिखे गये थे
लेकिन तुमने उन्हें पढा ही कब
कब पढना सीखा भी
कि तुम उन्हें पढ़कर
जंगली से इंसान बन सको
बन सको आदमी महान्, नही एक अदद आदमी !

मिटा डाली ना खुशहाली उनके घरो की

बुझा डाली ना टिमटिमाती रोशनी की लौ
उनके झोंपड़ेनुमा घरों की।
कर दिया ना उनकी बीवियों को अभागिन
बच्चों को यतीम।
उजाड़ दिये ना वे सब ठिकाने
जो कल तक उनके घर थे
सूनी पडी है वह सारी जमीन
क्या करोगे इतनी जमीन का ?

मरने के बाद तो तुम्हें भी
छ. फुट ही मिलेगी ज्यादा-से-ज्यादा !
घर जाकर अपना चेहरा देख लेना
देख लेना अपनी मर्दानगी
उन्हें, जिन्हे तुम नाम, काम, धाम से जानते नही
शक्ल सूरत से भी पहचानते नहीं
पहचानते भी थ तो फ़कत
वस्त्रों से, दाढी से, चोटी से
या ऐसी ही किसी निशानी से
लेकिन अब तो वे सब निशानियाँ
राख के ढेर में बदल गई है !
बहुत कुछ मिलेगा तुम्हें इस राख के ढेर मे
मुट्ठी-भर बाजार ले जाकर देख लेना उसकी क़ीमत
कुछ दाँतों या अस्थियों के टुकड़ों को,
क्या करोगे तुम इस राख के ढेर का
टटोलकर देखो तो सही
कुछ भी नही इस ठण्डी राख मे,
इस राख से
जैसे तुमने अपने सारे जीवन-मूल्यो को
राख कर दिया है
अपने ही हाथों !
न सही दाग राख के तुम्हारे हाथों में
राख आखिर राख ही तो है।
सिर्फ उसकी अस्थियों की ही नही

जिसको तुमने जलाया था, फूँका था
तुम्हारी इंसानियत की भी राख है ये,
निश्चित ही वे नहीं रहे जिन्हें तुमने मारा था
लेकिन तुम भी तो, तुम कहाँ रहे
गँवई या शहरी !
तुम भी तो गाँव या शहर होते जंगली बन गये
तब मैं तुम्हे जबलपुरी, भोजपुरी, फलाँ शहरी
—क्यों कहूँ !

जब तुम जंगली ही बन गये निरे जंगली
तुम समझ रहे हो
तुमने उनका शिकार किया है
या वह हुआ है तुम्हारा शिकार
हकीकत में तुम खुद शिकार हुए हो, उनके
जिनके करिश्मों को तुम समझ ही नही सकते।
जिनका जादू सिर चढ़ कर बोलता है
जब-जब बोलता है
तुम्हारा खून खौलता है
क्योंकि वे बहुत ज्यादा शरीफ हैं
—शरीफजादे हैं

और उनकी गोली के नहीं
उनकी शराफत के शिकार हुए हो तुम, हाँ तुम
तुम जो कल तक शरीफ थे
आज जंगली कैसे बन गये हो ?
बस्ती में, गाँव व शहर मे, रहते हुए .
और वे हैं ठीक पहले की तरह
कि आज भी शरीफ है,
एकदम सफेदपोश भी
उनके लिए सब बाजिब है, सब ठीक है :
क्योंकि उनकी शराफत ओढी हुई है !
इंसानी लिबास ओढ़ लेने से ही तो

कोई इसान नही होता
और नही होता है कोई
शहरो में रहने से शहरी !
शहरों में जंगलियों की तादाद
जिस तरह बढ़ रही है
हताशा व अदेशा मुझे होता है
क्या जंगल बच जायेंगे
आदमियों के बसने के लिए ?
और शहर हो जायेंगे जगन्न !
कही ये शहर जंगल न हो जायें
करीने से बसाये हुए
और आदमी को रहने के लिए
ढूंढनी पडे जगह जगल में !
जहाँ से वह कभी सभ्य होने
गाँव व शहर की तरफ आया था !

लेकिन तुमने उन ग्रन्थों के रचयिताओं को
बौना साबित कर दिया
अपने जंगली करिश्मे से
और खुश हो कि तुमने बदला ले लिया है
जंगलीपन का जंगलीपन से !
इंसानों की बस्ती जला कर, राख कर बस्ती को !
मैंने देखी है उस जलती हुई बस्ती की रात
और तुम्हारी हस्ती की ओछी बिसात
पहचान गया हूँ मैं तुम्हें,
तुम आदमी होने लायक थे ही नही
समझ गया आदमी नही बन सकते, भेड़िये कभी
धर्मग्रन्थों को चाट-चाट कर भी
न बन सके तुम और कुछ
लेकिन शहरी बन ही गये थे
तो जंगली तो नही बनना था तुम्हे !

वे एक फूंक मारते है, धीरे से
और हो जाती हैं बस्तियां की बस्तियाँ राख
ऐसी है उनकी साख .
ऐसे कीमियागर है वे
तुम उनकी फितरत क्या जानो !
जादू वह नही जो सिर चढ कर बोले
जादू वो कि सर्द खून खौले
और अब वे ही तुम्हारे खौलते हुए खून पर
छीटे मारने आयेंगे
ठण्डे शीतल जल के, छल के
और बन जायेंगे, अमन के मसीहा !
पर तुम तो, बौने के बौने ही रहोगे
उन्ही के करिश्मे से
तुम गँवई या शहरी से जंगली बने थे
बहुत दूर से हवा में उड़ती चिनगारी को
घास मे फूंक मारकर
दूर खडी घास मे आग लगा देने का फन
तुम क्या जानो !
उनके लिए तुम तो सूखी घास हो
इसी से उनके पास हो !
घास को वे इस तरकीब से सूखी ही रखते है
हरी भी नही होने देते
क्योंकि उनके लिए घास का सूखी रहना
—जरूरी है !

सच, कैसा अन्धेर है

आपके पास बैठने से
यह रग आपके लग नही जायेगा
नही सर, नही
यह काला रंग इतना कच्चा नही है
वर्षों की मेहनत-मशक्कत से
यह इतना गाढ़ा, काला हुआ है
आप खामख्वाह डर रहे है
और फिर आपके पास
मुझे बैठना ही कितनी देर है
सच, कैसा अन्धेर है !
इस काले रंग की खूबियाँ भी तो
आप जानते ही है
आप जब चाहे झापड़-पर-झापड लगाये
कोड़े-पर-कोडे चलायें
इस काली चमड़ी पर
आपकी श्वेत चमड़ी की तरह
कोई निशान नही उभरेंगे
कितना चोट-प्रूफ है यह रंग
क्योंकि यह सियाह रंग, बहुत सियाह है !
और फिर सर, आप तो कई बार
गिरजाघरों से लौटते
नशे मे धुत, हमारे घरो में आते रहे हैं

वक्त-बेवक्त
कई वार कुत्ते और घोड़े छोड़े है, आपने
हम पर
और हम डामर की सडक पर बिछ गये
पत्ते की तरह, गर्म-गर्म रेती पर
पर तब जो खून निकला, वह काला कहाँ था
वह लाल था सर, एकदम लाल
दफन हुई हड्डियाँ भी तो काली नहीं मिली ना !
कहाँ होती है, मिट्टी बनी देह काली
कहाँ हैं काले, हमारे दाँत, नाखून
खून, हथेलियाँ, तालू, जुबान
फिर इतना डर किस बात का
सिर्फ चमडी के काली होने का !
सर, हम लोग पीढ़ियों से
जंगली घास की तरह
भरपूर धूप में बड़े हुए है
चीथड़ों की गेंद खेलते-खेलते
एकदम नंगे बदन
एकदम भूखे पेट
आपकी फुसफुसाहट से दिल बहलाते
हर क्षण आपके भ्रू-संकुचन से डरते-डरते
क्या आप भी भूखे पेट, दिल बहला सकते हैं !
भूखे पेटवालो को बहला सकते हैं !
हर समय मौत के खौफ़ को कन्धों पर उठाये
इधर से उधर किराये के
सामान की तरह काम करते
घिसटते, टूटते, जीते-मरते, गँवार हम .
मेरी मन की नही
तो कम-से-कम मेरी हड्डियों की सफेदी में आप
यकीन करें सर, यकीन करें
काली नहीं हैं;
और देखी भी होंगी कभी तो

आपके कुत्तों द्वारा काट खाने पर
या आपके हंटरों से चमड़ी उधड़ जाने पर
कभी तो झलक पड़ी होगी
कभी तो हुई होगी आपकी
नजरे-इनायत !
या फिर सिर्फ चमड़ी पर ही रही है, आपकी नजर !
हाँ रंग तो कोयले-सा ही है सर !
सियाह एक दम सियाह !

लेकिन सर, कोयला भीतर जो
आग समेटे होने से ही
तो काला होता है
हमारे भीतर भी गुलामी के
जुल्मों की आग है !
उसे समेटे हम भी
अर्से से ऐसे ही जी रहे है
शायद इसी से काला हो गया है हमारा रंग
युगो से काला सियाह अन्धेर ही तो सह रहे है !

पोस्टर

मैं एक पोस्टर हूँ
सड़क या दीवार पर
चिपका हुआ इश्तहार
तुम चाहो
सैनिक ट्रक के नीचे कुचल सकते हो
फाडकर चिंदी-चिंदी कर सकते हो !
पर उससे क्या ?
मैं जमाने के दर्द को तो
बेनकाब कर चुका हूँ,
कुचल कर समझ लो
मर चुका हूँ !

तुमने कहा था

तुमने कहा था—
'इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए
पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए
वह मेहतर मैं हो नही पाता'
उस मेहतर की जगह
वे अफसर हो गये है !

तुम्हीं ने लिखा था—
कि 'कोई काम बुरा नही
बशर्ते कि आदमी खरा हो'

पर दोस्त !
अब तो आदमी ही
न खरा रहा, न खोटा
हर एक ने ओढ़ लिया है मुखौटा

पता नही तुम्हें कैसे लगा था कि
'जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नही है कि
कमी है विषयों की
वरन् यह कि आधिक्य उनका ही
उसको सताता है
और वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता है ।'

पर आज उसे रेडियो, पत्रिका, पाठ्य-समिति से
ठीक-ठीक विषय आसानी से मिल जाता है
जो अपने साथ चैक भी ले आता है।

तुम्हें 'कदम-कदम पर' भ्रम होता था कि
'प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है······
······प्रत्येक वाणी मे
महाकाव्य पीड़ा है।'

आज तुम होते तो
सारा भ्रम मिट जाता
प्रत्येक हीरे मे
चमकता पत्थर नजर आता
प्रत्येक महाकाव्य मे वाणी, महज वाणी
पुरस्कार दिलानेवाली, सरस्वती कल्याणी !

गुमशुदा की तलाश

देश के दिल दिल्ली
और जिगर के आसपास
नवम्बर चौरासी के पहले दिन
हुए कत्लेआम के वाद से
तुम अभी तक घर नही लौटे हो
वैसे तिया, तेहरवीं, पखवाडा मास—
सभी तो वीत चुके है
तुम्हारे अपने लोगों के आँसू—
अभी नही रुके है
रुकेंगे भी नही
जब तक तुम नही लौटोगे
लेकिन तुम कोई सुबह के भूले तो थे नही
कि शाम तक घर लौट आते
और हैवानियत की कहानी सुनाते !

तुम्हारे लोग अखवारों मे
गुमशुदा के विज्ञापन दे देकर
नाकाम कोशिश कर रहे है
तुम्हे खोजने की।
हम उन्हे किस मुंह से वतायें
कि तुम नही लौटोगे
तुम कोई भूले-भटके तो थे नही।

रास्ता भटकाने में माहिर लोग
लूटपाट कर कभी के घर आये लौट
होकर सत्ता की ओट
तुम, बेओट बेखोट थे
गुम हुए भी नही तुम
फ़क़त खत्म कर दिये गये
झरे नही जिन्दगी से
जैसे झरता है पत्ता।
गुम तो वे हुए है (उस भीड़ में)
जो तुम्हें खत्म करने के लिए जिम्मेदार है
सभी जानते हैं उनका पता
लापता नही हैं वे
काश, हम उन लोगों की तलाश करा पाते
जिनकी वेषभूषा, कद, काठी, रग-ढंग,
नाम-हुलिया
सभी का जाना-पहचाना है
काश, प्रेस-रिपोर्टरों की निशानदेही पर तो
ढूंढ लिये जाते
अपने अड्डों से
ढूंढ लिये जाते, उन जगहों से
जो जगहें, कभी से जानी-पहचानी है
ढूंढ लिये जाते वे, हत्यारे शातिर
पहचाने जाकर भी नही पहचाने जाते
बहुरूपिये।

हम जानते तो भी क्या
पुलिसवाले नहीं जानेंगे
पहचानकर भी नही पहचानेंगे
वे पुलिस के है, पुलिस उनकी है
हालांकि, थानों के ख़ानगी रोजनामचे में—
उनका निक नाम है।

मैं महादेव नहीं

मैंने महादेव की तरह
जहर को कंठ में नही रोका है !
उसे पचाया है !
मैं महादेव नहीं
मैं आदमी हूँ आदमज़ाद हूँ
जहर को कंठ से नीचे
उतारने वाले के कंठ से
कुछ जहरीले शब्द निकलते भी है
तो तुम चौंकते क्यों हो ?
क्या तुम आदमी नही हो ?
यदि हो तो फिर समझते क्यों नही
जो निगलता है
वह कभी-कभी उगलता भी है !
जहर को यूँ तो पूरी तरह जज्ब
मिट्टी ही कर सकती है
लेकिन मैं जड़ मिट्टी नही, आदमी हूँ
तुम मुझे देव बनाना चाहते हो
ताकि तुम बिना जहर निगले
महादेव बन सको !

वरना ऐसा क्यों होता है
मैं जब-जब तुम्हे देखता हूँ

तो मुझे खुद के आदमी होने पर
शक होता है
बहुत सम्भव है कि
मैं जहर को पचाकर
आदमी ही नहीं रह गया होऊँ
शक्ल तो तुम्हारी ठीक आदमी जैसी है
पर ठहरो
मुझे फिर से
अपनी शक्ल देख लेने दो
आदमकद चमकती-सी आँखों में।

अच्छा !
तो तुम इन्हीं आँखों से
दुनिया को देखते हो ना !
तुम्हारी आँखों में बसी दुनिया
गोल-मोल तो है
पर इतनी छोटी कैसे है ?
शायद तुमने कभी
जहर नहीं चखा है !
उसे पचाने की तो कल्पना
से भी अनजान हो
शायद इसी से तुम
महादेव से भी महान् हो !

मैं अकेला नहीं

मैं अकेला कभी न था
और न आज हूँ
क्योंकि मैं तो
सर्वहारा की आवाज हूँ
उनका हँसना मेरा हँसना है
उनका रोना मेरा रोना है
दुनिया
जिनके मिट्टी सने हाथों—
बना खिलौना है।

मैं : धरती के कोनों में

तुम तो चाहते हो
कि मेरी जिन्दगी
भीड़-भरे चौराहे से
एक शवयात्रा-सी गुज़र जाय
एकदम खामोश, उदास
गोया ज़िन्दगी कुछ और न हो
महज साँस लेती लाश !
और तुम,
थोड़ा-सा मुँह लटकाकर
यानि कुछ-कुछ रुँआसी आँखे बना
मेरी अर्थी को
कन्धा देकर समझ लो
कि तुमने अपने दोस्त के प्रति
अपना फ़र्ज़ पूरा कर लिया है
या कि फिर यह कह दो
कि बेचारा कितना कम जिया है !
और शोक-प्रस्ताव पारित कर
उसे काले बॉर्डर के बीच छपा दो
नही दोस्त, नही !
मैं तो मरकर भी
धरती के उन कोनों मे
धधकना चाहता हूँ

जहाँ सर्वहारा जीने के लिए
साँस लेने के लिए संघर्ष कर रहा है।
मैं तो मरकर भी
'उनको' दहशत में डालना चाहता हूँ
जो मेरी शवयात्रा में शरीक होकर
मेरी आकस्मिक मौत के प्रति
सहानुभूति दिखाना चाहते है।
क्योंकि
मेरी लाश के प्रति सहानुभूति
मेरी जिन्दगी को मारी गयी ठोकर
से ज्यादा क्या माने रखती है !
आखिर मैं अपनी जिन्दगी को
महज ऑक्सीजन खीचना
और कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ना
कैसे मान लूँ !
एक पूरे इन्सान की जिन्दगी
भ्रष्ट व्यवस्था के जूते मे
काटनेवाली कील भी न बन सके …!
तो फिर उसका अर्थ…?

लाश के साये तले आनेवाले आँसू
उनकी हमदर्दी के नहीं
नामर्दी के प्रतीक होते हैं
जो आफ्टर-शेव-लोशन लगे गालो से
खुद की मौत की कल्पना से—
अनायास ही
उमड़-उमड़ जल्दी-जल्दी फिसलते है।

रेखांकित हक़ीक़त

किसने कह दिया तुम्हें
कि मैं कविता लिखता हूँ
मैं कविता नही लिखता
मैंने तो सिर्फ़
जनमन के दर्द के नीचे
एक रेखा खींच दी है
हाँ, दर्द के नीचे
फ़क़त एक रेखा
गहरी बहुत गहरी
क्या करूँ,
व्यवस्था है बहरी !
पुनरावृत्ति दोष तो है
पर कहता हूँ
एक रेखा खींच दी है :
आपने नाहक
मुट्ठियाँ भींच ली हैं !

उस, चौड़े सपाट राजमार्ग पर
वह जो
पुलिस की गोली का शिकार
एक औरत
लम्बायमान पड़ी है

वह भी तो
व्यवस्था के जुल्म को
(जन-मन के दर्द को)
रेखांकित कर रही है
मेरी रेखा
हक़ीकत में
उसी लाश की प्रतीक है!

मरने के बाद

दोस्त मेरे !
मुझे मरने के बाद
चाहे जलाना या गाड़ना
या कहीं उछालना
कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा
लेकिन हाँ
यदि हो सके तो
तुम एक गहरा गड्ढा खोदकर
मेरे इस राशनकार्ड
इस परमिट, इस डिग्री को
केरोसिन की इस खाली बोतल को
किसी मौसम-प्रूफ कैपसूल में रखकर
नेहरू के कैपसूल की तरह
इतना गहरा गाढ़ देना .
कि कभी आनेवाली पीढ़ियाँ
पुरातत्त्व के मोह में
जमीन खोदें
तो उन्हें पता चल सके—
इस आजाद देश में
एक काल ऐसा भी था
जब राशनकार्ड तो होता था
पर धान नहीं मिलता था

परमिट तो मिलता था
छप्पर नही मिलता था
खाली बोतल तो मिलती थी
किरोसिन नही मिलता था
जिस डिग्री को नौजवान
दुल्हन की तरह घर लाता था
कमरे में सजाता था
उम्र-भर साथ लिये फिरता था
उस डिग्री से नौकरी नही मिलती थी :

ऐसा स्वर्णिम काल था वह
ऐसा रामराज्य था
भारत हर स्तर पर विभाजित था
जब साम्यवादी दल
शासक दल से मिल-जुलकर
चुनाव लड़ता था
हँसिये और गाय का
समाजवादी नाता था !
और यदि तुमको
किसी मिनिस्टर की अध्यक्षता में होनेवाली—
गोष्ठी से
फुर्संत न मिले,
तो मेरे इस राशनकार्ड को
इस डिग्री को, इस परमिट को
मेरे फूल समझ कर
पावन गंगा मैया में बहा देना
ताकि मुझे ये सब
स्वर्ग में मिल सकें !
इस देश में
हर ईमानदार और बेईमान
मरने के बाद
स्वर्गीय ही हो जाते हैं !

सही ज़मीन

आपकी इस्लाह के लिए शुक्रिया
मुझे आपकी बात की
इसलिए परवाह नही
क्योंकि मेरे पाँव
सही ज़मीन पर टिके है
ये जमीन मुझे गर उछाल नही सकती
तो गिरा भी नही सकती
कितनी मुश्किल से मिलती है
किसी को सही जमीन !
....

तुम्हें तुम्हारा आकाश मुबारक !
मेरा उससे क्या वास्ता
अलग ही सही
मेरी मंजिल मेरा रास्ता

बहुत चाहा

बहुत चाहा
अवाम के दर्द को पी लूं
और
एक जिन्दगी जी लूं
मगर, न जी सका
....
अवाम के दर्द को न पी सका !

कविता का अर्थ

मेरी भाषा का व्याकरण
पाणिनि नही
पददलित ही जानते हैं
क्योंकि वे ही मेरे दर्द को —
पहचानते हैं :
मेरी कविता का कमल
बगीचे के जलाशयों मे नही;
झुग्गी-झोंपड़ियों के कीचड़ में खिलेगा।
मेरी कविता का अर्थ
उत्तर-पुस्तिकाओं में नही
फुटपाथों पर मिलेगा !

समाधि लेख

मैंने
इसीलिए आँसू नहीं टपकाया
कि आँसू की एक बूंद
जुल्म के आगे पूर्ण विराम-सी खड़ी
देह के पाँव तले गिर कर
उसे विस्मयादि बोधक चिह्न न बना दे !
और अब
साँस थकने पर जो
डैश-सा पसर गया हूँ मैं
यह न समझना कि मर गया हूँ मैं !
हकीकत में पसरने के बहाने
जिन्दगी को ही रेखांकित कर रहा हूँ मैं
मैं, हाँ मैं !
सर्वहारा मैं !
तुम्हारा मैं !!